॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

श्रीस्वामिरामानन्दाचार्याय नमः

उभयवेदान्तज्ञ अनन्त श्रीस्वामी

श्रीअग्रदासजी महाराजैः

संग्रहीता

श्री रामप्रपत्तिः

सा च

अनन्तश्रीस्वामि पं० श्रीरामवल्लभाशरणैः

भाववोधिनीभ्यां संस्कृत भाषाटीकाभ्यां

संकलिता

अनन्तश्रीमणिरामछावनी प्रधानैः श्रीस्वामि

श्रीरामशोभादास महोदयैः स्वीयैर्धन

व्ययैः प्राकाश्यं नीता

❀ श्रीसीतारामाभ्यांनमः ❀

॥ श्रीहनुमते नमः ॥

भाष्य काराय श्रीस्वामि रामानन्दाचार्याय नमः

श्रीस्वामीअग्रदासजी कृत

श्रीरामप्रपत्तिः
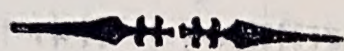
सीतानाथसमारम्भां, रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां, वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥१॥

श्रीस्वामिरामानन्दाचार्यप्रभृतयोऽस्मदाचार्यपर्यन्ताः श्रीरामानन्दानुयायिनस्तु स्वशिष्यान् प्रति प्रपत्तिममुना प्रकारेण कारयन्ति। १

श्रीस्वामी रामानन्दाचार्य जी को आदि लेकर हमारे आचार्य तक श्री सम्प्रदाय के आचार्य वर्य अपने शिष्यों को इस प्रकार प्रपत्तिकरातेहैं। अर्थात इसप्रकार अपने शिष्योंको शिक्षा देतेहैं, तात्पर्य यह है कि शिष्यको भगवान्‌की शरणमें अर्पणकर शिष्यको यह उपदेश देतेहैं और भगवान्‌की प्रार्थना सिखाते हैं कि इस प्रकार से प्रभुसे प्रार्थना करो और तुम इस प्रकार से अनुसन्धान करना यथा—

स्वामिन् ते शेषभूतोऽहं भोग्यस्ते रक्ष्य एव च।
अकिञ्चनोऽनन्योपायस्त्वत्कैङ्कर्यैकभोग्यकः।१

हे स्वामिन् अहं ते तव शेषभूतः तव शेषतां प्राप्तः नत्वन्येषां केषांचिद्देवानामितिभावः॥ ते तव भोग्यः तवैव भोक्तुं योग्यः। तथा अहं रक्ष्यः रक्षितुं योग्यः रक्षणीय इत्यर्थः। एव कारेण श्रीरामादन्येन जीवानां रक्ष्यत्वं वार्यते जीवा रामेणैव रक्षणीया न त्वन्यैरित्यर्थः। अकिंचनः रामादन्यत् किञ्चन न विद्यते परायणं यस्य सः अर्थात्—

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखात्व मेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम रामदेव॥ इत्युक्त प्रकारेण श्रीरामएव मे सर्वस्व भूत इत्यर्थः॥ अनन्यो पायः न विद्यते अन्य उपायोयस्यः सः अनन्योपायः अर्थात् श्रीरामप्राप्तौ श्रीराम एव उपायभूतः न तु तत्प्राप्तौ साधना-न्तरं भवति यतः "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृ-णुते तनूं स्वाम्,, इति श्रुत्या भगवत् कृपैक लभ्यत्वं नि-श्चीयते। त्वत्कैङ्कर्यैक भोग्यकः त्वत् तव कैङ्कर्यमेव एकं भोग्य यस्य सः नतु विषय भोग्यत्वम्॥

हे स्वामिन् मैं आपका शेष भूत हूं आपको छोड़कर दूसरे का मैं शेष नहीं हूं किन्तु हे श्री राम जी मैं आप का हीं शेष हूं जैसे स्रक् चन्दन कुसुमादि वस्तु पुरुष के शेष हैं। अर्थात् जीवों से यथा रुचि बिनियोग करने योग्य हैं। जीव इनके साथ रुचि के अनुसार व्यवहार कर सकता है। उसी प्रकार मैं जीव भी आप के यथारुचि विनियोग करने योग्यहूं। अर्थात् जीव के भोगने में ईश्वर स्वतन्त्र हैं जिस प्रकार से इसको भोगे जहां चाहें वहां इसको राखें वहीं जीव को उसी प्रकार से रहना होगा जसे चन्दन कुसुमादि पुरुषसे कुछनहीं कह सकते पुरुष जब जैसा चाहे तव तैसा उसको अपने भोग्य में ला सकता है। इसी प्रकार श्रीरामजी जीव को जब जैसा चाहें तब तैसा रख सकते हैं भोग सकते हं। जीवको उसमें बोलने का कुछ भी अधिकार नहीं है क्योंकि ईश्वर स्वतन्त्र हैं और जीव परतन्त्र है यही शेष भूत पद का मुख्य तात्पर्य है। और मैं आपका भोग्य हूं आप मेरे भोक्ता हैं भोग्य बस्तु भोक्ता के आधीन रहती है उसी प्रकार जीव भी ईश्वर का भोग्य है ईश्वर के आधीन है व जब जैसा चाहें तब तैसा मुझ जीव को भोग सकते हैं। यहां प्रथम पदसे शेष शेषी सम्बन्ध को दिखलाकर दूसरे पद से भोक्तृभोग्य सम्बन्ध दिखाया। अब तृतीयपद से रक्ष्य रक्षक सम्बन्ध दिखलातेहैं कि मैं आपका रक्ष्य हूं आप मेरे रक्षक हैं रक्ष्य वस्तु रक्षक के आधीन मानी जाती है। रक्षक अपनी रक्ष्यवस्तुकी अवश्य

रक्षा करता है, इससे यह समझना कि मैं जब ईश्वर की रक्ष्य वस्तुओं में से हूं तो ईश्वर मेरी अवश्य रक्षा करेंगे और करते भी हैं। मेरा तो धर्म यही है कि मैं पूर्ण बिश्वास से श्री रामजी को अपना रक्षक मानूं और यह भी निश्चय है कि जिस समय जीव ईश्वर को अपना रक्षक समझेगा उसीसमय भगवान् उसकी रक्षा करेंगे। और जीव अमर होजायगा। यहां पर जो एव पद आया है वह यह निश्चय करता है कि श्रीरामजीकोछोड़कर अपना कोई रक्षक ही नहीं है जीव सब श्रीरामजीसे ही रक्षणीय हैं अन्य देवताओंसे नहीं मैं अकिं-चनहूं अर्थात् श्रीरामजीको छोड़कर और मेरेपास कुछभी नहीं है श्री राम ही मेरे सर्वस्वहैं अर्थात् श्रीरामजीही माता हैं पिता हैं बन्धु हैं सुहृत हैं और विद्या तथा धन सब श्रीराम जी ही हैं और मैं अनन्योपाय हूं आपको छोड़कर मेरे दूसरा उपाय साधन नहीं है मेरे सब उपाय आप ही हैं। आप की प्राप्ति के लिये दूसरा कुछ भी साधन नहीं है। आप की प्राप्ति में साधनान्तरों का तो परम हितैषिणी श्रुति भग-वती निषेध ही करती हैं कि परमात्मा प्रवचन तीक्ष्ण बुद्धि बहु शास्त्र श्रवण से नहीं प्राप्तहोता है। प्रत्युत जिसको यह स्वीकार कर लेता है उसीको प्राप्त होता। और उसीको अपना स्वरूप दिखा देता है। इस श्रुति से भगवान् की कृपासे ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है दूसरे उपायों से कदापि नहीं हो सकती। इससे जीवका उपाय शून्यत्व मुख्यधर्म है

यह दिखाया। अतः अन्य उपायों का अवलम्बन लेना भ्रम मात्र है ईश्वरको छोड़कर ईश्वर की प्राप्ति के लिये और योग क्षेम के लिये उपायान्तरों से श्री वैष्णवों को कुछ भी प्रयोजन नहीं है। तथा मैं आप के एक मात्र कैङ्कर्य का भोक्ता हूं आप का कैङ्कर्य ही मेरा एकमात्र भोग्य है।

एतावता यह दिखाये कि जो जीव के लिये विषय भोग प्राप्त हुये हैं वे उसके भोग्य नहीं हैं जीव का भोग्य तो केवल भगवत्कैङ्कर्य ही एक मात्र है बिषयों को अपना भोग्य समझना बहुत भारी भूल है। अतः "तव कैङ्कर्यं मेव मम सदा प्रयोजनम ,, आपका कैङ्कर्य ही मेरा सदा प्रयोजन है यहां आचार्य पाद का वचन भी इसी का समर्थकहै ॥१॥

अगतिश्चानु कूल्योऽहं प्राति कूल्येन वर्जितः।
रक्षिष्यतीति विश्वासी स्वरक्षा प्रार्थनायुतः।२।

अहं अगतिः-नास्ति गतिर्यस्यासौ अगतिःरामादन्यगति-शून्यः। आनुकूल्यः-अनुकूलस्य भावः आनुकूल्यं तदस्ति यस्मिन् मयि इति आनुकूल्यः अशीघ्रचत्वात् अनुकूल संकल्पवानित्यर्थः। प्रातिकूल्येनवर्जितः। प्रतिकूलस्य भावः प्रातिकूल्यं तदस्ति यस्मिन्निति प्रातिकूल्यं तेन वर्जितः रहितः प्रतिकूलसंकल्परहित इत्यर्थः। रक्षिष्यतीति विश्वासी श्रीरामो मामवश्यं रक्षिष्यति मम अवश्यं रक्षां करिष्यति, इति विश्वासी विश्वासयुक्तः स्वरक्षा प्रार्थनायुतः स्वस्य

रक्षायाः प्रार्थनायुतः अर्थात् हे श्रीराम मामभिरक्षयेति पौनः पुन्येन प्रार्थना परो भवामीत्यर्थः। एतेन शरणागतिलक्षणम् आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः" इदम् फलितम्॥ २॥

मैं अगति हूं श्री रामजी ही मेरी गति भूत हैं। अर्थात् श्रीरामजी को छोड़कर मुझे अवलम्बन देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। मेरे सर्वस्वगति अवलम्ब श्रीरामजी ही है तथा मैं अनुकूल संकल्प वाला हूं अर्थात् आपकी कृपासे मैं अनुकूल संकल्पवान् होगया हूं आपनेही प्रेरणाकरके मुझे अनुकूलवान् वना लिया और प्रतिकूल के संकल्प से मैं वर्जित हूं। आप की प्राप्ति के जो विरोधी हैं उनके संकल्प से मैं रहित हूं। आपकी कृपा ने मुझे ऐसा बना लिया है कि आप की प्राप्ति के संकल्प को छोड़कर आप की प्राप्ति के वाधक पुत्र,कलत्र, संसार का मैं संकल्प ही नहीं करता हूं यह आपकी कृपा है कि मैं ऐसा होगया। श्रीरामजी मेरी रक्षा अवश्य करेंगें इस विश्वास से युक्त हूं, अर्थात् यह बिश्वास मुझे है कि श्री रामजी मेरी रक्षा अवश्य करगें श्री रामजी को छोड़कर दूसरा कोई भी मेरी रक्षा करने वाला नहीं है अपनी रक्षा की प्रार्थना से युक्तहूं अर्थात् हे श्री रामजी मेरी आप अभितः रक्षा करैं ऐसी बारम्बार प्रार्थनाकरना यह

मेरा मुख्य धर्म है। इससे अनुकूल का संकल्प १ प्रतिकूल का वर्जन २ रक्षा करेंगे यह विश्वास ३ श्री रामजी मेरे गोप्ता रक्षक हैं यह वरण करना ४ आत्मनिक्षेप ५ और कार्पण्य ६ यह जो षड् विध शरणागति वताई गई है उसमें से चार प्रकार की वर्णन किये अब आत्मनिक्षेय और कार्पण्य रूपाशरणागति द्वितीय मन्त्र से वर्णन करते हैं॥

कृपणोऽहं दयासिन्धो सर्वपापऽकरस्तथा ।
स्वञ्च स्वीयञ्चयत्किञ्चत्त्वयिन्यस्यामिस्वीकुरु २

हे दयासिन्धो-दयाया: कृपाया: सिन्धु: समुद्रस्त संबुद्धौ, अहं कृपण: दीन: सर्वपापकर: सर्वाणि पापानि कर्तुं शीलमस्यातीति सर्वेषाम् पापानामनुष्ठातेत्यर्थ: अत्र ताच्छील्येऽप्प्रत्ययात् पापप्रवृत्ति मय एव स्वभाव: इति तात्पर्यम्। स्वं आत्मानं स्वीयं यत्स्व सम्बन्धि पुत्र कलत्र धनादि तत्सर्वं त्वयिपरमात्मनि श्रीरामे न्यस्यामि समर्पयामि। तत्सर्वं त्वं स्वीकुरुतस्य सर्वस्यापिस्वीकृतिस्त्वया कार्येत्यर्थ: अत्र "कृपणोहं स्वञ्च स्वीयञ्चयत् किञ्चित्त्वयिन्यस्यामि इत्याभ्यां द्वाभ्यांपदाभ्यां आत्म निक्षेपात्मिका, कार्पण्यात्मिका च शरणागतिरभिहिता भवति॥ ३॥

हे दया के समुद्र मैं अत्यन्त कृपण हूं दीन हूं और मैं सब पापों का करने वाला हूं अर्थात् सदा मैं सब पापों का

ही अनुष्ठान करता हूं शुभाचरण तो मेरे से बनता ही नहीहै मेरे पापप्रबृत्तिमय स्वभाव होरहा है अतः आप ही रक्षाकरें मेरे पाप से प्रबृत्तिको रोककर अपनी तरफकरलें तथामें अपने को और अपने सम्बन्धी पुत्र कलत्र परिवार धनादिको आप के चरणों में समर्पणकरताहूं याने आपकी वस्तुको आपको ही समर्पण करताहूं। उसे आप स्वीकारकीजिये। यहां पर कृपणः और स्वंच स्वीयञ्च यत् किञ्चित् त्वयिन्यस्यामि इन दोनों पदों से कार्पण्य रूपा और आत्मनिक्षेपरूपा शरणागति कही गई इति ॥ ३ ॥

न्यस्यामि किञ्चनः श्रीमन्नात्मरक्षा त्वयि ।
मेत्वत्प्राप्तिरुपायस्त्वं कृपया भव राघव ॥४॥

अहं अकिञ्चनः— किञ्चनः कर्तुमसमर्थः त्वत् प्राप्ते-रुपायान्तररहित इत्यर्थः अतएव हे श्रीमन् आत्मनो रक्षाया भरं भारं त्वयि श्रीरामे न्यस्यामि मदात्मनो त्व-दधीनप्रवृतिकत्वात त्वय्येव रक्षाभारं निवेशयामि त्वञ्च रक्ष कत्वान्मे रक्षां कुरु। तथा च हे राघव स्वस्य प्राप्ते रुपायो मे मम कृपया त्वमेव भव ॥ ४ ॥

में अकिञ्चन हूं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूं अर्थात् आपकी प्राप्ति के उपायान्तरों से रहित हूं अतएव हे श्रीमन् अपनी रक्षा का भार आप में न्यास करताहूं। क्योंकि मेरी आत्मा की प्रबृति आपके आधीनहै इससे आपमें इसकी रक्षा

योग्य ही है और आप मेरे रक्षक हैं आपका रक्ष्य ही हूं इस हेतु से भी रक्षा कीजिये हे श्री राघव आप ही अपनी प्राप्ति के लिये मेरे उपाय रूप हो जांय क्यों कि अपनी प्राप्ति के जब आपही उपायसिद्ध हैं तोमेरे लिये भी आप ही हो जाइये ।४।

एतच्चराचरं सर्वं यच्च यावच्च श्रूयते ।
सर्वमस्ति त्वदीयं हि श्रुतिभिश्चावगम्यते ।५

यदेतत् यावद् यावत्परिमितं साकल्येनेत्यर्थः तत्सर्वं सम्पूर्णंचराचरं, चरश्च अचरश्चेति तज्जङ्गमस्थावरात्मकं जगच्छ्रूयते तत्सर्वं त्वदीयमेव त्वत्स्वरूपत्वात् त्वया व्याप्यत्वाद्वा तवैवेदमिति यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा यत्परब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ अहं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्मन् तत्त्वमसि,एवमादिभिः श्रुतिभिः वहिरन्तएतद्व्याप्यत्वतस्य तादात्म्यतां गतमित्यादिभिः श्रुत्युपबृंहणभूताभिःस्मृतिभिश्चावगम्यते ।५।

यह सम्पूर्ण जङ्गम और स्थावर रूप जगत सुनने में आता है,, वह सब आपका ही है, क्योंकि यह जगत आपका स्वरूप है आप इसके कारण हैं । कार्य कारणसे अनन्य होता है इसी से कार्य को कारण स्वरूप ही माना गया है और आप इसके व्यापक हैं यह आपका व्याप्य है। अतः यह जगत् आपका है यह श्रुतियों से निश्चय होता है, अर्थात् वेदों के

देखने से यह जाना जाता है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् मात्र आपका है। इसका दूसरा स्वामी नहीं है आपही हैं अतः इसकी रक्षा करना परम कर्तव्य है क्योंकि अपनी बस्तु की सब कोई रक्षा करता है. यह आपकी बस्तु है अतः आपसे इसकी रक्षा होनी ही चाहिये ॥ ५ ॥

न तादृशं दृढं ज्ञानं मयि स्वामिन् प्रतिष्ठितम्
त्वन्तु सर्वं विजानासि सर्वं वस्तु ममेति च॥६

हे स्वामिन् स्वामिगुणसमपन्न मयि त्वया रक्षणीये सर्वोपायशून्ये तादृशरक्ष्यरक्षकस्वामिसेवकसम्बन्ध—विशिष्टं, सर्वं वस्तु त्वदात्मकमिति वा ज्ञानं दृढं न, किन्तु कादाचित्कमेव विद्यते सर्वं वस्तु मम मया च सर्वं रक्षणीयमिति स्वयं सर्वदा जानासि, सर्वज्ञत्वात्, स्वप्रकाशत्वात्, सदैकस्वरूपज्ञानत्वाच्चेत्यर्थः ॥ ६ ॥

हे स्वामिन् हमारे हृदय में तादृश ज्ञान दृढ़ रूप से स्थिर नहीं रहता है, अर्थात् रक्ष्य रक्षक, स्वामि सेवक सम्बन्ध वाला ज्ञान अथवा सब वस्तु आपकी है ऐसा ज्ञान दृढ़ एक रूप से सदा एक रस नहीं रहता है। कभी २ क्षणिक ज्ञान होता है परन्च आप यह सर्वदा जानते हैं कि यह सब वस्तु मेरी है. इसकी रक्षा करना मेरा परमकर्तव्य है क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं स्वप्रकाश स्वरूप हैं सदा एक रूप ज्ञान वाले हैं, अतः आप

का ज्ञान सदा दृढ़ रूप से एक रस बना रहता है कि सब वस्तु मेरी है और हम से रक्षणीय है ॥ ६ ॥

संसारसागरे भूमन् तत्त्वद्वस्तुनिमज्जितम् ।
पश्यसि त्वं समर्थः सन् कारणं किं वद प्रभो ७

हे भूमन् सर्वाश्रयगुणाहि गुणक तत् मदात्मकं त्वद्वस्तु त्वदीयं वस्तु अहमित्यर्थः संसार सागरे, संसारः सागर इव तस्मिन् निमज्जितं निमग्नं त्वञ्च समर्थः सन् सर्वमेतत् पश्यसि समर्थः सन् त्वं संसारसमुद्रे निमज्ज्यमानं स्वकीयं वस्तु मां न परित्रासि, अथ च पश्यसि । अथ च स्वस्त्वपरित्राणे किं कारणं तत्त्वमेव वद कथयेत्यर्थः ॥७॥

हे भूमन् यह सब जो आपकी वस्तु है सो संसार समुद्र में सब डूब रहे हैं आप हम सबके निकालने में समर्थ भी हैं। तो भी सब देख रहेहैं। समर्थ होते हुये भी आप संसार सागर में डूबते हुये मेरी रक्षा नहीं करते प्रत्युत देख रहे हैं इसका कारण क्या है कि आप रक्षा नहीं करते हैं । इसका उत्तर आपही दीजिये ॥ ७ ॥

चेतनाचेतनं सर्वं मदीयं सत्यमस्ति वै ।
जीवोऽप्यसौ मदीयश्चेत्यभिमानान्निमज्जते ८

यावत्स्वत्वाभिमानोऽस्य तावत्संसारसागरे।
निमज्जितोऽभिमानान्ते ह्युद्धरिष्यामिचेद्वद ६

चेद् यदि एवं मनुषे यत् चेतनाचेतनं जीवप्रकृति-मयं सर्वं जगत् मदीयमेवेति सत्यमस्ति चेतनाचेतनात्म-कस्य जगतो मदीयत्वाज्जीवोऽप्यसौमदीयोऽस्त्येव। स्व-कीये वस्तुनि स्वत्वाभिमानस्योचितत्वात् परकीयवस्तुनि स्वत्वाभिमानं करोति तस्मात् निमज्जते परन्तु मदीये वस्तुनि यावत् अस्य जीवस्य स्वत्वाभिमानस्तावदसौ जीवः संसारसागरे निमज्जितो वर्तते यदास्य मदीयवस्तुनि स्वत्वाभिमानस्य अन्तो नाशो भविष्यति अर्थाज्जीवो य-दैवं वेत्स्यति यन्मत्सहितं सर्वं चेतनाचेतनं जगत् परमा-त्मन् एव तदोद्धरिष्यामि संसारसागरान्निःसारयिष्यामि इति वद कथयेत्यर्थः ॥ ८ ॥ ९ ॥

यदि आप यह कहें कि यह चेतन और अचेतन अर्थात् जीव और प्रकृति रूप सब जगत् मेरा सही है और जीव भी मेरा ही है अपनी बस्तु में अपनपौ का अभिमान होना स्वाभाविक है,, परकीय बस्तु में स्वत्वाभिमान अनुचित है जीव मेरी बस्तु है उसमें जीव जो स्वत्वाभिमान करता है वह उसके लिये अनुचित है। इसीकारण से संसार में डूबा हुआ है ॥ ८ ॥ परञ्च मेरी बस्तु में जीवको जब तक स्वकीय

पने का अर्थात यह सब मेरी वस्तु है ऐसा अभिमान रहेगा तब तक संसार सागर में डूबा रहेगा और जब अभिमान का नाश होजायगा अर्थात् जीव स्वत्वाभिमान को त्यागकर जब अपने सहित सम्पूर्ण चेतन और अचेतन जगत परमात्मा का हैं ऐसा जब ज्ञान होगा तब उद्धार करूंगा ऐसा यदि आप कहें तो उसका उत्तर सुनिये । ९ ॥

सत्यमहं मदीयश्च सर्वमन्यत्तवास्ति वै ।
तथाप्येषोऽभिमानो मे हेतुस्तवनियोजनम् १०

अहं मदीयं च मत्सम्बन्धि पुत्रकलत्रधनादिकम—न्यच्च यावत्पदार्थं जातं तत्सर्वमेव तवैव सत्यमस्ति निश्चयेन । तथा त्वदीय एतस्मिन् वस्तुनि य एष मम अभिमानः । स मिथ्याभूत एव, यदयं मां मिथ्याभूतोऽभिमानस्तस्य तव नियोजनप्रेरणमेव हेतुः तदुक्तम्— येनापिदेवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि, स एव साधु कर्म कारयति यमूर्ध्वं निनीषति, सएवासाधुकर्म कारयति यमधोनिनीषति ॥ १० ॥

हे नाथ मैं और मेरी संबन्धी जितनी वस्तुहैं वे अथवा अन्यत भी जितना पदार्थ देखने सुनने में आता है वह सब यथार्थतया आपका ही है । तथापि उसमें जो मेरा अभिमान होगया है कि यह पदार्थ मेरा है यह अभिमान मेरा झूठा है

यथार्थ नहीं,, क्योंकि त्वदायत्त पदार्थ में सदाऽऽयत्तत्व का का अभिमान करना असत्य ही है । परञ्च हमारे इस मिथ्या. भूत अभिमान का कारण आपकी प्रेरणा ही है, आप की जब ऐसी प्रेरणा होती है कि इसको इसप्रकार का अभिमान हो तभी तो मुझे अभिमान होता है बिना आपकी प्रेरणा के मुझे ऐसा अभिमान हो ही नहीं सकता क्योंकि मेरे सब तरह के प्रेरक आप ही हैं । तब मेरा यह अभिमान भी आपही का हुआ मेरा नहीं और जब यह अभिमान आपका सिद्ध हुआ तो इस अभिमान से मुझे जो संसार पतनरूप दुःख मिलता है सो नहीं मिलना चाहिये ॥ १० ॥

अहं मदीयञ्चेत्येषोयोऽभिमानो दुरत्ययः ।
त्वयिन्यस्यामितंस्वामिन्त्वदीयंतंहिस्वीकुरु

हेस्वामिन् अहं मदीयश्च (अहङ्कारममकार रूपः) य एष अभिमानः अमितः सर्वतः मानः स दुरत्ययः दुःखेन अत्ययो नाशः, कर्तुमयोग्यः तमहं भूमाभिमानं त्वयि स त्याभिमानिनि मिथ्याभिमानी अहं न्यस्यामि न्यासं करोमि तं स्वीकुरु । मिथ्याभूतमदीयाभिमानस्वीकारेण मां स्वीकुरु कृतार्थयेत्यर्थः ॥ ११ ॥

हे स्वामिन् यह मैं हूं यह सब मेरा है यह जो मुझे अभिमान होरहा है सो हमारे छुड़ाये न छूटेगा क्योंकि वह

दुरत्यय अर्थात दुःख से भी उसका नाश नहीं हो सकता है तात्पर्य यह है कि यह अभिमान भी तो आपकी ही प्रेरणा से प्राप्त हुआ तब हमसे कैसे छूट सकता है आप ही फिर इस तरह का संकल्प करें "कि इस जीव का अहं ममाभिमान छूट जाय बस शीघ्र ही छूट जायगा। "जोई बांधे सोई छोरे" अतः हे प्रभो इस अभिमान का मैं आपमें न्यास करता हूं। अर्थात् आपको ही अर्पण करता हूं आप इसको स्वीकार करें ॥ ११ ॥

निर्हेतु कृपया सर्वं स्वीकृत्य करुणानिधे।
अहं ममाभिमानं मे निखिलं छिन्धिमूलतः१२

हे करुणानिधे मे मम सर्वम् अहं ममाभिमानं निर्हेतु कृपया हेतु रहितया कृपया स्वीकृत्य अङ्गीकारं कृत्वा अथ च तं निखिलं सम्पूर्णममाभिमानं मूलतश्छिन्धि मूलविनाशेन शाखा पल्लवसमन्वितो यथा भूरुहो विनश्यति तथैव त्वदीयनिर्हेतुकया कृपया मूलतोऽहं ममाभिमाने शाखापल्लवान्वितसंसारवृक्षे विनश्यत्येवेत्यर्थः ॥१२॥

हे करुणानिधे मुझे अहंपने का अर्थात मैं धनी हूं मैं ब्राह्मण हूं मैं विद्वान हूं यह जो अभिमान और यह सब पुत्र कलत्र गृह धनादिक मेरे हैं यह जो अभिमान होरहा है इसको आप अपनी निर्हेतुकी कृपा से स्वीकार कीजिये क्यों

कि मैं यह प्रथम ही प्रार्थना कर चुका हूं कि इसको मैं आपके चरणों में समर्पित करता हूं कारण यह है कि आपका तो यह नियम है कि "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्त्युपहृतं ह्यश्नामि प्रयतात्मना,, अर्थात् भक्त जन भक्तिपूर्वक जो कुछ मुझे समर्पण करते हैं उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। अतः मेरे पास जो कुछ है उसे मैं भी समर्पण करता हूं आप अपनी निर्हेतुकी कृपा से स्वीकार करें और उसी अपनी निर्हेतुकी कृपा से इस अभिमान को जड़ से छेदन कर दीजिये। यद्यपि आपकी कृपा प्राप्त करने के लिये मेरे पास कोई साधन नहीं है अतः आपही निर्हेतु की कृपा करें क्योंकि आप कारण रहित कृपालु, कारणरहित कृपाकरने वाले हैं उसी कृपा से इस मिथ्याभूत अभिमान का मूल कारण अज्ञान है अतः मूलतः अर्थात् अज्ञान के सहित इस अभिमान को छुड़ाइये और मुझे अपना शुद्ध दास बनाइये ।। १२ ॥

यदिनास्त्यानुकूल्यादिर्मयिस्वामिन्यथार्थतः
वद्धाञ्जलिपुटं दीनं रक्ष मां शरणागतम् १३

हे स्वामिन् यदि मयि यथार्थतोऽनुकूलादिः षड्धा शरणागतिः नास्त्येव तथापि वद्धाञ्जलिपुटं वद्धम् अजलिपुटं येन स तं ललाटन्यस्तमुकुलितहस्तंदीनं शरणा

गतं श्रीमतः शरणे प्राप्तं मां रक्ष । अयमत्राभिसन्धिः यद्यपि मय्यानुकूल्यादिषड्विधासु शरणागतिषु कापि नास्ति तथापि 'बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्' ॥ "न हन्यादानृशंस्यार्थं मयि शत्रुं परन्तप ॥ आर्तो वा यदि दृप्तं परेषां शरणं गतः । अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना।" सकृदेव प्रपन्नाय इत्यादि इत्युक्तां स्वकीयां प्रतिज्ञामवलोक्य मामभिरक्षेत्यर्थः ॥ १३ ॥

हे स्वामिन् यद्यपि मेरे में अनुकूल का संकल्प प्रतिकूल का वर्जन आदि जो षड् विध शरणागति यथार्थतःनहींहै तथापि मैं हाथ जोड़ कर दीन होकर शरण में आया हुवा हूं अतः आप मेरी रक्षा कीजिये । तात्पर्य यह है कि छः प्रकार की शरणागति में से मेरे में एक भी नहीं है तथापि हाथ जोड़ दीन होकर याचना करते हुये अपनी शरण में आये हुये शत्रु को आप न मारे, क्यों कि आर्त हो वा दृप्त हो परन्तु शरण में आये हुये शत्रु की प्राणों को देकर भी रक्षा करनी चाहिये । जो एक बार भी "मैं आपका हूं,, ऐसा कहता है और शरण में प्राप्त होता है उसके लिये मैं सब भूतों से अभय प्रदान कर देताहूं यह मेरा व्रत है प्रतिज्ञाहै, इस प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी प्रतिज्ञा को देखकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

यथाहं च मदीयं च न मे रामस्य तत्वतः।
भाति मे हृदये सम्यक् तथा कुरु दयानिधे।१४।

हे दयानिधे अहं च मदीयं चेदं सर्वं तत्वतो यथार्थतः मे मम न, किन्तु श्रीरामस्यैव चिदचिदात्मकं सर्वं वस्तु जातमिति सम्यक् पूर्णबोधतया यथा येन प्रकारेण मे मम हृदये भातु उदयतु तथा कुरु तादृशानुकम्पा विधेया येनैतस्मिन् वस्तुनि सदा तावकीयत्व बोधः स्थिरः स्यादित्यर्थः ॥ १४ ॥

हे दयानिधे अमुक नाम से प्रसिद्ध अमुक जाति वाला मैं हूं ऐसा जो मैं ने अपने को समझ लिया है वह और पुत्र कलत्र, धन, धर, प्रभृति जगत मेरा है ये दोनों ही मेरे अभिमान झूठे हैं क्यों कि तत्वतः यह मेरे नहीं हैं किन्तु मैं और मेरा यह सब श्री राम जी का है इस प्रकार का ज्ञान मेरे हृदय में जिस प्रकार पूर्ण रूप से प्रकाशित होवै वैसा अपनी ओर से कीजिये ॥ १४ ॥

त्वन्मायया मलीमसं हृदयं निर्मलं कुरु।
येनाऽहं संविजानामि त्वां त्वदीयं च तत्वतः१५

तव माययाऽविद्यया मम हृदयं मनः मलीमसं दूषितम् तद्धृदयं त्वं निर्मलं कुरु। येन निर्मलेन हृदयेन त्वां मत्प्रे-

ऽहं तत्वतः संविजानामि, इदं सर्वं परिदृश्यमानं चराचरं जगत् त्वदीयं, त्वमस्य जगतः कर्त्ता प्रेरकः नियामकश्च। जगदेतच्च तवकार्यं त्वया प्रेर्यं नियाम्यं च, तव कार्यं त्वदधीनमित्यर्थः। एतत् सर्वं तत्वतो यथार्थतोऽहं संविजानामि तथा मे ज्ञानं सम्पादयेत्यर्थः ॥ १५ ॥

हे प्रभो मेरा मन आपकी माया से मलिन होगया है इसे आप निर्मल कर दीजिये जिससे मैं उस निर्मल मन से आप को अर्थात् आपके स्वरूपको और "आपही प्रेरकहैं और नियामक हैं और यह जगत रूप कार्य आप का है आपके आधीन है यह सब मैं यथार्थ से जानूं ऐसा ज्ञानमुझे प्रदान कीजिये। यह ज्ञान आपके प्रदान करने से मुझे मिल सकता है दूसरे किसी प्रकार से किन्हीं साधनों से नहीं मिलसकताहै ॥ १५ ॥

त्वत्कृपाया दृष्टि मात्रेण तद्धि सर्वं भविष्यति। न वै परिश्रमः कश्चित्तव तत्र दयानिधे ॥१६॥

हे दयानिधे त्वत्कृपादृष्टिमात्रेण तव कृपाया अवलोकनादेव तत् त्वत्स्वरूपबोधकं च सर्वं ज्ञानं मम हृदये भविष्यति। तत्र तादृश ज्ञानोत्पादने तव कश्चित् परिश्रमो न भविष्यति। मन्मनसि तादृशज्ञानोत्पादनेच्छावत्त्या

कृपया श्रीमतावलोकित एवानायासेनैव तादृशज्ञानमुदेष्यतीति तात्पर्यम् ॥ १६ ॥

हे दयानिधे आपके स्वरूप बोधक और चराचर स्वरूप बोधक ज्ञान आपकी कृपा दृष्टि मात्र से होजायगा, आपकी कृपा होनी चाहिये, यह ज्ञान आपकी कृपा से ही होगा। दूसरे उपायों से नही में यदि अन्य उपाय करूं भी । तथापि वैसा अर्थात् आप इस विश्व के कर्त्ता हैं कारण है यह विश्व आपका कार्य है, आपके आधीन है, क्योंकि कारण की शक्ति के अधीन के ही कार्य रहता है, अतः आपकी ही शक्ति सब काल में इसके नियमन करतीहै यह ज्ञान आपकी कृपाके विना प्राप्त ही नहीं हो सकनी है तथा आप को मेरे ऊपर कृपा दृष्टिकरने में और मेरे हृदयमें वैसा ज्ञानोत्पादन करनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं है। अनायास से ही हो जायगा केवल कृपावलोकन मात्र की देरी है, कृपावलोकन से ही मुझे तादृश ज्ञानप्राप्त हो जायगा ॥ १६ ॥

प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धार कृपानिधे ।
एतद्देहावसाने मां [illegible] प्रापय दयाकर ॥१७॥

हे दीनोद्धार दीनान् मायया संतप्य मानानुद्धरतीति तत्सम्बोधनं दीनोद्धार संकल्पशीलेत्यर्थः । हे कृपायाः निधे कृपासमुद्र महादीनोऽहं प्रार्थयामि यत् हे दयाकर

एतद्देहस्य अवसाने अन्ते मां स्वकृपापात्रं स्वात्मानं प्रापयेत्यर्थः ॥ १७ ॥

हे दीनोंद्धार दीनों के उद्धार करने से आपका नाम दीनोंद्धार है, आप दया के निधि समुद्र हैं, अतएव आप दयानिधि कहलाते हैं, और दीनों के ऊपर आपकी दया सर्बदा अधिक रूप से रहती हैं, अतएव आपको भक्त जन दयाकर कहते हैं, हे दयानिधे मैं महानदीन हूं, सर्वसाधन धन हीनहूं, अतः आप से प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे इस देह के अन्तमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति करा दीजिये, तात्पर्य्य यह है कि यद्यपि मैं सब पापों से युक्तहूं और कुछभी साधन मेरे पास नहीं है इसी कारण से आप को दयाकर, दयानिधि, तथा दीनोद्धार समझ कर महादीन हो मैं प्रार्थना करता हूं कि इस देह के अन्त में मुझे अपनी प्राप्ति करा दीजिये अर्थात्—मैं जिसप्रकार से से आपको प्राप्त हो सकूं वैसा कीजीये ॥ १७ ॥

स्वदत्तज्ञानदीपेन नाशयाज्ञानजंतमः ।
स्वतत्व ज्ञान पूर्वं मां स्वार्थं स्वमर्पयस्वयम् ।१८।

स्वदत्तज्ञानदीपेन स्वेन दत्तं यज्ज्ञानमेव दीपस्तेन अज्ञानजं अज्ञानेन जातं तमः अन्धकारं नाशय नाशया-म्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता,, इति भवता प्रतिज्ञा-

तत्त्वादित्यर्थः । तथा स्वतत्वज्ञानपूर्वं स्वस्य तत्वस्य ज्ञानं तत्पूर्वं स्वस्वरूपबोधकबोधपुरस्सरं स्वार्थं स्वं स्वकीय मात्मानं मां मह्यमित्यर्थः स्वयं त्वमेव प्रापयेत्यर्थः ।।१८।।

हे प्रभो अपने से दिये हुये ज्ञानरूपी दीप से मेरे अज्ञान से जायमान अंधकार को नाश कीजिये । और अपने तत्व के ज्ञान पूर्वक मुझे अपनी आत्मा को समर्पण कीजिये जो मेरा सच्चा स्वार्थ है, क्योंकि भगवान की प्राप्ति वा प्रीति ही जीव का सच्चा स्वार्थ है ।। १८ ।।

यानि सञ्चितपापानि तानि नाशय मे प्रभो ।
अकृत्येषु प्रवृतिं मे वारय बुद्धिप्रेरक ।। १६ ।।

हे प्रभो सञ्चित, प्रारब्ध क्रियमाणेषु त्रिविध कर्मसु सञ्चितपापानि, सञ्चितकर्माणि, अत्र पापशब्देन भगवत्स्वरुपप्राप्तिविरोधीनि कर्माण्युच्यन्ते पुण्यपापात्मकयोरुभयोरपि कर्मणा इन्द्रादिलोकनरकादि प्रदत्तत्वेन मोक्षविरोधित्वात्' यानियावत्परिमितानि तानि सर्वाण्यपि नाशय । तथा च हे बुद्धिप्रेरक बुद्धि प्रेरयतीति तत्सम्बोधनं हे गायत्रीप्रतिपादितदेव श्रीराम अकृत्येषु त्वत्स्वरूपप्राप्तविरोधिषु मे मम प्रवृत्तिं वारय प्रतिरोधयेत्यर्थः नन्वेतेन सञ्चितक्रियमाणयोरेव कर्मणोर्नाशः स्यात् नतु प्रार-

ब्धस्य तथा च तयोर्विनाशस्तथा प्रारब्धस्य कथं विनाशो न स्यादिति चेत् उच्यते यदि प्रभुः स्वकीयया निर्हेतुकया कृपया प्रारब्धमपि विनाशयेत् तर्हि प्रारब्धावसाने शरीरपातः स्यात् अथ च भगवत्कृपायां सत्यां शरीरस्य नाशो भवतीति प्रवादोपि स्यात्तश्च तदीय-कृपानुलाभाय कश्चिदपि न पतेत्, ततश्च स्वकीया कृपा निरवकाशा न भवेदिति कृत्वा सञ्चितक्रियमाणे कर्मणी विनाश्यापि प्रारब्धं कम न विनाशयति। अतएव "इतरं तु भोगेनैव क्षपयित्वा" इतरस्य प्रारब्धस्य कर्मणो भोगेनैव क्षपणमुक्तमित्यर्थः ॥ १९ ॥

हे प्रभो सर्वशक्तिमान सञ्चित क्रियमाण और प्रारब्ध रूप कर्मों में से मेरे सञ्चितकर्मों को आप नाशकर दीजिये। यहां पर पाप पद से भगवान के स्वरूप प्राप्ति के विरोधी कर्म कहे जाते हैं। क्योंकि पुण्यात्मक शुभ कर्मों से इन्द्रादि लोकों की प्राप्ति होगी ये दोनों कर्म भगवत्प्राप्ति के विरोधी है अतः ये सब पाप पद वाच्य हैं इसलिये इन दोनों प्रकार के मेरे कर्मों को नाश कर दीजिये, अर्थात मुझे ऐसा कर दीजिये कि मैं उनमें पुनः कभी प्रीति न कर सकूं। क्योंकि इन सञ्चित कर्मों के बने रहने में बुद्धि उन्हीं में लगी रहती है इससे उन्हीं में प्रवृत्ति अधिक होती है और जब आप सं-चितों को नाश कर देंगे तो बुद्धि शुद्ध होकर आप में लगेगी और हे बुद्धिप्रेरक अर्थात हे गायत्री प्रतिपाद्य देव श्रीरामजी

आप मेरी बुद्धि की अकृत्यों में प्रवृत्ति रोकिये । आप जब अपनी परम कृपा से मेरी बुद्धि को शुद्ध करके अपनी तरफ प्रेरणा करेंगे तभी आपकी तरफ मेरी प्रवृति होगी । और दूसरी तरफ से प्रवृत्तिहटेगी बुद्धिप्रेरक कहने से वेदों का मुख्य मन्त्र जो गायत्रीहै उसके प्रतिपाद्यदेव आपहीको जाना है क्योंकि गायत्री में "धियोयोनः प्रचोदयात्,, बुद्धिप्रेरक-त्वेन प्रार्थना के पद आते हैं अतएव बुद्धिप्रेरक इस सम्बोधन से आप को ही गायत्री प्रति पाद्य सिद्ध किया । जैसे कि श्री रामस्तवराज में आपकी "भर्गं वरेण्यं विश्वेशं,, आदित्य-रविमीशानम् सूर्यमण्डलमध्यस्थमित्यादि मन्त्रों से गायत्री प्रतिपाद्यत्व प्रतिपादन किया है तात्पर्य यह है कि यदि श्रीरामजी कहें कि तुम हमसे इतनी प्रार्थना क्यों करते हो तो उसके उत्तर में कहा है कि आपहीतो बुद्धियों के प्रेरक हैं दूसरा तो है नहीं फिर किस से प्रार्थना करूं ॥ १६ ॥

यथानिर्मुच्य पापेभ्यस्त्वत्प्राप्तेर्योग्यता भवेत्।
मयि स्वामिन् हरे राम तथा त्वं मां स्वयंकुरु २०

हे हरे स्व प्राप्ति विरोधीनि सर्वाणि दुरितानि हरतीति हरिस्तत्सम्बोधनं मयि सर्वेभ्यःपापेभ्यो निर्मुक्तो भूत्वा त्वदीयस्याः प्राप्तेः योग्यतास्यात् तथा हे स्वामिन् श्री राम मां त्वं स्वमेव कुरु । एतेन "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं

मुखम् ॥ तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्मायदृष्टये । इति मन्त्रोक्तसुपबृंहितम् ॥ यतो हिरण्मयेन सांसारिकभोगविलासेच्छया सत्यस्य जीवस्य मुखमपिहितं, विषयेच्छया त्वत्प्राप्तिसाधनीभूतायास्त्वदीयायाः कृपायाः विमुखीभूय वर्तते जीवः । हे पूषन् स्वनिर्हेतुककृपावलोकनपुरःसरं स्वप्राप्तिसाधनीभूतभक्तिरूपशक्तिं दत्वा जीवस्य धर्मभूतज्ञानम् अपावृणु अनाच्छादितं कुरु येन सत्यस्य धर्मणो दर्शनं भवेत्। तादृशीं योग्यतां देहि येन त्वद्दर्शनं त्वत्प्राप्तिर्भवेदित्यर्थः ॥ २० ॥

हे स्वामिन् हे हरे हे श्रीरामजी मुझ में पापों से मुक्ति पूर्वक आपकी प्राप्ति की योग्यता हो वैसा आप स्वतः कीजिये अर्थात प्रथम आप मेरे पापों को दूर करें क्योंकि अपनी प्राप्ति के विरोधी पापों को आप दूर करने वाले हैं इसी से आपको हरि कहते हैं । और उसके बाद अपनी प्राप्ति की योग्यता मुझे प्रदान करें ताकि मैं आपको प्राप्त कर सकूं । यह सब आपके चाहने से ही हो सकेगा क्योंकि आप बुद्धि के प्रेरक हैं , अतः प्रेरणा करके उसे पापों से हटा देंगे। तब आपकी प्राप्ति की योग्यता स्वयं हो जायगी, क्योंकि पाप ही तो आपकी प्राप्ति के विरोधी थे । उनको आपने जैसे हटाया वैसे ही त्वत्प्राप्तियोग्यता हो जायगी जैसे भोजन करने से क्षुधा की निवृत्ति होती है। उसके हृष्टि पुष्टि आदि अपने

श्रीरामाष्टक

संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रग्रहाकुलात् ।।
गोप्तारौ मे दयासिन्धू प्रपन्नभय भञ्जनौ।२३।
योऽहंममास्ति यत्किंचिदिह लोके परत्र च ।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम ।। २४ ।।
अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः ।
अगतिश्च ततोनाथौ भवन्तावेव मे गतिः ।२५।
तवास्मि जानकी कान्त कर्मणा मनसागिरा
राम कान्ते तवैवास्मि युवामेव गती मम २६
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणा निकरकरौ करुणालयौ ।
प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनि २७
मत्समोनास्तिपापात्मात्वत्समोनास्तिपापहा
इतिसञ्चित्य देवेश यथेच्छसि तथा कुरु २८
अन्यथाहि गतिर्नास्ति भवन्तौहि गतिर्मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन कृपां कुरु कृपानिधे, २९
दासोहं शेषभूतोऽहं तवैव शरणं गतः ।
पराधितोऽहं दीनोहं पाहि मां करुणाकर ३०